अंतिम दशक का हिंदी नाट्यसाहित्य : समय और समाज

✍ रवीन्द्रनाथ मिश्र

प्रत्येक युग के परिवर्तित समय और समाज को उस युग की कलाओं में देखा जा सकता है। ये कलाएं समयानुकूल जिंदगी की परतों को नई-नई संवेदनाओं के साथ खोलती हैं। सदियों से साहित्य इसका सशक्त माध्यम रहा है और आज भी है लेकिन मीडिया एवं बाजारवाद के प्रभाव के कारण अब वह दरकिनार हो रहा है। साहित्य और मीडिया की जीवंतता उसमें सन्निहित समय और समाज की धड़कन पर ही केन्द्रित होती है। इस दृष्टि से यदि हम 20वीं सदी के अंतिम दशक के साहित्य का अवलोकन करें, तो वह सम्प्रदायवाद, आतंकवाद, सत्ताहस्तांतरण, राजनीतिक अपराधीकरण, नारी-दलित उत्पीड़न, मीडिया सूचना एवं तकनीकी विस्फोट, भूमंडलीकरण, भारतीय एवं पश्चिमी विचारों, मूल्यों और शिक्षा का संक्रमण, परिवार विघटन, नारी-पुरुष के बनते-बिगड़ते रिश्तों आदि समसामयिक युगीन झंझावातों से प्रभावित रहा। जिसे की साहित्य की विभिन्न विधाओं ने विशेषकर उपन्यास और मीडिया ने समूचे परिवेश को बड़ी बखूबी से चित्रित किया। उसनें व्यक्ति और समाज के अंतरमन के बारीक सूत्रों को टटोलते हुए उसे व्यापक फलक पर गहरी संवेदना के साथ उतारने की कोशिश की है। मीडिया ने दो कदम और आगे बढ़ते हुए उसे श्रव्य एवं दृश्य के माध्यम से आकर्षक और बोधगम्य बनाया। यह कार्य सदियों से नहीं कर पाई। साहित्य विधाओं की महत्ता और प्रासंगिता को लेकर अनेक बहसें की जा रही हैं। लेकिन यह बात सही है कि दृश्य-श्रव्य मीडिया के प्रभाव से नाटक का वजन कम हुआ है। फिर भी मुझे विश्वास है कि मनुष्य भौतिकता, यांत्रिकता और बौद्धिकता की आंच से तप्त होती संवेदनाओं और घर की चारदीवारी की घूटन-टूटन से ऊब एवं तड़पड़ाकर एक न एक दिन कविता और नाटक के पास जरूर आएगा।

यहाँ मैंने अंतिम दशक के कतिपय प्रमुख नाटकों के आधार पर युगीन समय और समाज की संवेदनाओं को परखा है। आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व 1991 में स्वदेश दीपक द्वारा रचित और रंजीत कपूर द्वारा मंचित बहुचर्चित नाटक 'कोर्टमार्शल' आया। जिसमें दलित रामचंदर के अपमानित जीवन से उपजी हिंसात्मक प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है। वह होरी, हल्कू, जोखू आदि की तरह अन्याय और अत्याचार को बर्दाश्त नहीं करता। नाटक का सम्पूर्ण परिवेश एवं उसका ताना-बाना आर्मीजीवन की संस्कृति और वहाँ की न्यायव्यवस्था 'कोर्टमार्शल' को लेकर बुना गया है। जिसे सूरत सिंह (सभापति जज) कैप्टन विकास राय (बचाव वकील) मेजर अजय पुरी (सरकारी वकील) कैप्टन कपूर, गुप्ता, सूबेदार बलवान सिंह (गवाह) रामचंदर (अपराधी) आदि पात्रों एवं संवादों के माध्यम से मंचीय जीवंतता प्रदान की गई है।

भारतीय सामाजिक वर्ण व्यवस्था में ऊंच-नीच, छुआ-छूत का भेदभाव सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थानों में थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ आज भी लगभग उसी रूप में विद्यमान है। इस बात की पुष्टि 26 अगस्त, 2006 के नवभारत टाइम्स में वरिष्ठ पत्रकार विश्वनाथ सचदेव द्वारा 'यहाँ इंसान को इंसान नहीं समझा जाता' शीर्षक लेख में उन्होंने एक सर्वेक्षण लेख के आधार पर लिखा है कि "दस से बीस प्रतिशत गांवों में दलितों को साइकिल पर चढ़ने की मनाही है, वे सवर्णों के सामने छाता खोलकर नहीं चल सकते।" यह है आज हमारे इक्कीसवीं सदी के भारत की दशा। यहाँ विवेच्य नाटक में " जात का चूहड़ा और टट्टी उठाने में शर्म आती है। तुम्हारे पुरखे पुश्तों से हम लोगों की टट्टी की टोकरी सिर पर उठा रहे हैं।" (पृ० 78) जैसे कैप्टन कपूर एवं समय-समय पर उनके मित्र वर्मा द्वारा कहे गए अपमानित शब्दों से नौकर रामचंदर तिलमिला उठता है। मानसिक यातना से त्रस्त रामचंदर इन दो अधिकारियों की हत्या करने के मंसूबे से एक दिन उन दोनों पर गोली चला देता है जिसमें वर्मा की मृत्यु हो जाती है लेकिन कपूर बच जाता है। मामला कोर्टमार्शल में जाता है जहाँ पर उसे फाँसी की सजा सुनाई जाती है क्योंकि उसने अपना गुनाह कबूल कर लिया था लेकिन इस अवसर पर बचाव पक्ष के वकील विकास राय कपूर के निजी पारिवारिक जीवन के घिनौने रूपों को सबके सामने खोलकर रख देता है।

लेखक ने कथ्य के रूप में समसामयिक दलित समस्या को लेकर बीच-बीच में हिंदी भाषा के प्रति अनुराग जताते हुए बहुत सहज एवं सरल भाषा में लोकजीवन के मुहावरों से नाटक को गढ़ा है। यही कारण है कि मंचीयता एवं प्रासंगिकता की दृष्टि से भी काफी लोकप्रिय रहा। वस्तुतः इक्कीसवीं सदी के उषाकाल में भी दलित एवं नारी के ऊपर ढहाए गए अत्याचारों की कथाएं साहित्य और मीडिया द्वारा आए दिन परोसी जा रही हैं। जिनसे कि हमारे विकसित समाज का विद्रुप सच बाहर आ रहा है।

1993 में प्रकाशित 'मुआवजे' नाटक में भीष्म साहनी सीधे समाज की मूल्यहीनता और राजनीति में बढ़ते अपराधीकरण की संस्कृति पर व्यंग्य करते हैं। प्रशासनिक अधिकारी और राजनेताओं की मिलीभगत से जनता के शोषण की घटनाएं आए दिन पढ़ने और सुनने को मिलती हैं। प्रस्तुत नाटक दंगे के बाद मिलने वाले मुआवजे पर केन्द्रित है। सच्चाई यह है कि दंगा हुआ नहीं है लेकिन सरकार का पूरा तंत्र इसके माध्यम से शोहरत प्राप्त कर लेना चाहता है। समाज की हालत यह है कि शांति का पिता अपनी असहाय अवस्था के कारण बेटी की झूठी शादी दीनू नामक रिक्सावाले से इकलिए करना चाहता है कि दीनू के मरने के बाद मुआवजे के रूप में मिली रकम से वह अपनी बेटी की शादी अच्छी तरह से कर सके किंतु ऐसा नहीं होता। झूठी शादी के बाद शांति इधर धीरे-धीरे दीनू से प्रेम करने लगती है और उधर दीनू अपने को मिटाकर भी शांति के भविष्य को खुशहाल बनाना चाहता है। यहाँ साहनीजी ने प्रेम और त्याग की अद्भुत मिशाल कायम की है।

यहाँ-जहाँ एक ओर मिनिस्टर, कमिश्नर, थानेदार, सक्सेना आदि यश, स्वार्थ और धन के वशीभूत होकर दंगे के बाद शासन द्वारा जनता को बांटे जाने वाले मुआवजे के बंदोबस्त में लगे हुए हैं तो वहाँ दूसरी और जग्गा अपने मसल पावर को यूज कर सरकारी खजाने से मुआवजे के लिए जमा की गई धनराशि को लूटकर जनता में बांट देता है। जिससे कि उसे खूब प्रसिद्धि मिलती है। मनी और मसल का सहारा लेकर वह चुनाव में खड़ा होना चाहता है। नैतिक रूप से भ्रष्ट होते हुए भी उसकी दानशीलता के चर्चे चारो तरफ हैं। वस्तुतः इस प्रकार की मूल्यहीनता हमारे समाज और समाज की नियति बन गई है। आज तो मुआवजे की राजनीति धड़ल्ले से की जा रही है। सुथरा नामक पात्र कहता है - 'जब से मुआवजों की स्कीम चली है, कितने लोग अपने आदमी मरवाने के लिए घूम रहे हैं।' ... 'बाबा, अगर छह महीने बाद मरेगा, तो क्या मालूम उस वक्त तक मुआवजे की रकम और बढ़ा दी जाए? देखते नहीं चारो ओर कीमतें बढ़ रही हैं। बाजार कैसे जोबन पर है, कुछ सोचा करो।' (पृष्ठ 71) यह नाटक वर्तमान राजनीतिक जीवन का सच्चा आइना है। सच्चाई यह है कि आज हम जिंदगियों का मुआवजा तो चुका रहे हैं लेकिन भविष्य में मृत होती हुई संवेदनाओं और मूल्यों का मुआवजा कहाँ तक दे पाएंगे।

इस दशक में बहुमुखी प्रतिभा के धनी सुरेन्द्र वर्मा के 'कैद-ए-हयात', 'सेतुबंध', 'नायक खलनायक विदूषक' और 'द्रौपदी' नाम से चार लघु नाटक आए। जिनमें प्रथम का 1993 में एवं अन्य तीन का 1999 में 'तीन नाटक' नाम से प्रकाशन हुआ। 'कैद-ए-हयात' तीन अंकों में समाप्त होने वाले नाटक में मिर्जा नौशा, परवेज, कल्लू, यासीन, उमराव, आपा, कातिबा और शीरी नामक पात्र हैं। जिसकी कथा प्रतीकात्मक जीवन के आर्थिक अभाव, गजल, शेरो-शायरी के जुनून एवं उसकी संरचनात्मकता, मदिरा की मदहोशी और पत्नी-प्रेमिका के बीच पेण्डुल सी बनी जिंदगी पर आधारित है। मिर्जा नौशा की शायरी की शोहरत के साथ उनके प्रेम के चर्चे गली-कूचों तक हैं। यहाँ मिर्जा सामान्य धरातल पर उमराव (पत्नी) और कातिबा (प्रेमिका) के बीच तने हुए हैं। कातिबा की भी हर एक श्वास मिर्जा के प्रेम में सनी हुई है। वह मिर्जा से कहती है - 'और मुझे क्या मिला, यह नहीं कहते? मैं अपनी बर्फ्नसी तन्हाई में कतरा-कतरा जमते हुए कब की दफ्न हो चुकी होती....' (पृष्ठ 44)

यह नाटक अपने समय के रचनाकार की अभाव भरी जिंदगी के साथ उसकी रचनात्मक ऊर्जा एवं गोपनीय प्रेम संबंधों की दास्तान बयां करता है। इसमें प्रासंगिकता के छीटें तो हैं लेकिन ऊर्दू के बोझिल शब्दों के कारण आम नागरिक के लिए मंचीयता की दृष्टि से उपयुक्त नहीं है।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथ्य पर आधारित 'सेतुबंध' नाटक आज के परिवर्तित समय और समाज में नारी की प्रगतिशील मानसिकता को दर्शाता है। यहाँ 'सेतुबंध' शीर्षक कई नवीन अर्थव्यंजनाओं से भरा हुआ है। आज जहाँ एक तरफ मानव का जीवन प्रयत्न और प्राप्ति के बीच सेतुबंध का कार्य कर रहा है तो वहीं दूसरी तरफ संतान पति-पत्नी को सेतु की तरह जोड़ रही है। प्रस्तुत नाटक में प्रवरसेन, प्रभावती, विभावती, दौवारिकी, सम्राट नामक पाँच पात्र हैं। मुख्य संवाद माँ प्रभावती और पुत्र प्रवरसेन के बीच है। जिसमें वर्तमान नारी की परिवर्तित मनःस्थिति एवं प्रगतिशील दृष्टि का खुलासा हुआ है-

प्रवरसेन : इसलिए कि तुम मेरी माँ हो। तुम्हारे साथ पवित्रता का भाव जुड़ा हुआ है।

प्रभावती : (मृदु स्वर में) माँ हूँ, लेकिन स्त्री भी तो हूँ। क्योंकि माँ हूँ, इसलिए स्त्री का अधिकार ..... (करुण मुस्कान से) नहीं, विवशता ..... छिन जायेगी?

प्रवरसेन : (तीव्र स्वर में) लेकिन तुमने वैवाहिक मर्यादा का उल्लंघन किया। पति के होते हुए पर पुरुष को चाहना।

प्रभावती : परंपरागत शब्दों को छोड़ दो। क्या कोई स्थिति ऐसी नहीं हो सकती, जिसमें परपुरुष पति बन जाए और पति परपुरुष?

उक्त संवाद में प्रभावती के विचारों से लेखक ने इस बात की तरफ संकेत किया है कि आज परंपरागत वैवाहिक व्यवस्था की चूलें हिल रही हैं। जिसकी ध्वनि अभी जल्दी ही रिलीज हुई 'कभी अलविदा न कहना' फिल्म में स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती है। लेखक ने जगह-जगह पर धर्म, जाति और भाषा के नाम पर बंट रहे समाज और देश को अखण्डता के एक सूत्र में बांधने तथा रचनाकार की रचना धर्मिता एवं उसके रचना-सामर्थ्य पर सार्थक टिप्पणी की है।

सुरेन्द्र वर्मा के 'नायक खलनायक विदूषक' लघु नाटक की रचनाभूमि इतिहास, समझौतापरक राजनीत, एवं मूलतः नाट्य पात्र योजना पर आधारित है। महाराज पुष्पभूति मेरुतुंग साम्राज्य के पराक्रमी सेनापति शक्तिभद्र से युद्ध में पराजय की संभावना के कारण बहुत सारी कीमती वस्तुएं भेंट कर संतुष्ट करना चाहते हैं। इस अवसर पर शक्तिभद्र के मनोरंजन हेतु 'अभिज्ञानशांकुतलम्' के मंचन की योजना बनाई जाती है क्योंकि यह नाटक उन्हें विशेषरूप से प्रिय है। लेखक ने संकेत रूप में आज हमारे समय और समाज में व्याप्त तुष्टिकरण की नीति का खुलासा किया है।

'अभिज्ञानशाकुंतलम्' के मंचन की व्यवस्था में सूत्रधार दर्शकों के बैठने की व्यवस्था में समाज के चार वर्गों के लिए स्थान निर्धारित करने पर स्थापक इस बात का संकेत देता है कि 'इनमें वे प्रभावशाली शुद्र सम्मिलित नहीं है, जो बिना शुल्क दिए नाटक देख लेते हैं।' (पृष्ठ 43) अंबरबाला द्वारा नाट्यशाला में स्थायी रूप से बालक होने की बात पर कुलवर्धना (चंचलतापूर्वक) कहती हैं तो जल्दी से ब्याह कर डाल .... और दान में दे देना। (पृष्ठ

52) इसकी प्रतिक्रिया में मंजुश्री का यह कथन परिवर्तित युवा आधुनिक नारी समाज की मानसिकता को दर्शाता है कि 'तू अंबरबाला को इतना पिछड़ा हुआ समझाती है'। यह बिना ब्याह के ही ऐसा त्याग कर देगी।' (अंबरबाला से) ठीक है न सखि?

नाटक के मंचन की मूल्य समस्या तब खड़ी होती है जब विदूषक कपिंजल बार-बार एक ही भूमिका करने से मना कर देता है। वह किसी भी कीमत पर नाटक में विदूषक नहीं बनना चाहता। इससे सम्पूर्ण नाट्य मंडली के साथ महाराज एवं अन्य राजदरबार के लोग दुःखी हो जाते हैं क्योंकि शक्तिभद्र को प्रसन्न करना उनकी मजबूरी है। महाराज स्वयं उसे समझाते हुए कहते हैं कि यदि मैं यह कहूँ कि मैं शासन करते-करते ऊब गया हूँ क्योंकि बार-बार मुझे उसी सिंहासन, हेमपीठ, स्वर्णछत्र आदि का प्रयोग करना पड़ता है। उनके इस कथन पर कपिंजल कहता है - 'आपकी और मेरी ऊब में बहुत अंतर है, श्रीमान मेरी ऊब एक कला साधक की ऊब है, जो मंच पर भिन्न-भिन्न पात्रों के माध्यम से जीवन को समझता है, आत्मान्वेषण और आत्माभिव्यक्ति करना चाहता है।' (पृष्ठ 58)

अंत में कुमारभट्ट के इस कथन से नाटक के शीर्षक का औचित्य समझ में आता है कि किस प्रकार मनुष्य समयानुसार समाज में विभिन्न भूमिकाओं का निर्वाह करता है और उसके अर्थ भी बदलते रहते हैं। कुमारभट्ट् कपिंजल को समझाते हुए कहता है कि वस्तुतः नायक, खलनायक और विदूषक ये एक ही व्यक्तित्व के तीन पक्ष हैं, जैसे कि कण्व के आश्रम में प्रेम व्यापार के समय दुष्यंत शकुंतला के लिए नायक है। जब वह गर्भवती अपनी पत्नी को पहचानने से मना कर देता है तो खलनायक और अंत में शकुंतला के पैरों पर गिरकर क्षमा-याचना करता है, तब उसकी स्थिति विदूषक की हो जाती है। आज के समय और समाज का अवलोकन करें तो मनुष्य विविध परिस्थितियों के कारण उक्त तीनों भूमिकाओं में जी रहा है।

'तीन नाटक' का अंतिम 'द्रौपदी' नाटक की कथाभूमि मोहन राकेश के 'आधे-अधूरे' नाटक से मिलती - जुलती है। इसमें भी एक परिवार की कथा है जो कि बाजारवाद और मीडिया के आधुनिक प्रभाव से पूरी तरह प्रभावित है। मनमोहन और सुरेखा के अलका और अनिल दोनों बच्चे अपने आधुनिकता की हदों को पार करते हुए मनमाने ढंग से अपने लड़का और लड़की मित्र के साथ घूमते ही नहीं हैं अपितु उनके गलत संबंध भी हैं। इसकी जानकारी माता-पिता को है लेकिन वे इसे सहज रूप में लेते हैं। यहाँ तक कि माँ लड़की से पूँछती है कि बात कहाँ तक आगे बढ़ी है। प्रेम संबंधों का जिस रूप में खुला चित्रण किया गया है वह पश्चिमी समाज के खुलेपन को भी मात देता है।

विष्णुप्रभाकर का 'सूरदास' नाटक प्रेमचंद के 'रंगभूमि' उपन्यास का रूपान्तर है लेकिन नाटकीयता और मंचीयता की दृष्टि से उत्कृष्ट है। साहित्य और मीडिया के द्वारा आज भी गाँधी के विचारों की प्रासंगिकता बनी हुई है। प्रेमचंद के द्वारा प्रयुक्त हरिजन शब्द को लेकर भी दलित-विमर्श की आंच को हवा दी जा रही है।

1925-27 के समय 'रंगभूमि' में पांडेपुर गांव में औद्योगिक शोषण के जिस तांडव का जिक्र किया गया है उसका विद्रुप स्वरूप आज भी पूंजीपतियों द्वारा जारी है। सूरदास ने पूंजी के प्रभाव के कारण जिस ग्राम्य-संस्कृति के नष्ट होने की बात 1925 के आसपास की थी उसका विद्रुप रूप आज हमारी आँखों के सामने है। पूंजी के बढ़ते प्रभाव के कारण 'अहा! ग्राम्य जीवन क्या है? की संस्कृति विलुप्त हो गयी है। यंत्रों का मायाजाल बढ़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप हम खुद यंत्रवत हो गए हैं और उनके बीच हमारी मानवीय संवेदनाएं मरती जा रही है। गाँधीजी ने आजादी की लड़ाई कई मोर्चो पर लड़ी। पहले तो वे आध्यात्मिक मूल्यों से व्यक्ति मन को साफ करना चाहते थे। उसके बाद अन्य लड़ाई के पक्षधर थे। आज तो मीडिया ने गाँधी के विचारों को और भी प्रासंगिक बना दिया है विशेषकर युवा पीढ़ी को।

राकेश का 'रामलीला' (97) नाटक समसामयिक भावबोध की दृष्टि से एक सफल काव्य नाटक है। जिसके अंतर्गत रामलीला खेलने की तैयारी के माध्यम से उच्चवर्गीय परिवार की मानसिकता, शोषक शक्तियों की

मिलीभगत और साम्प्रदायिक उन्माद एवं सद्भाव का चित्रण हुआ है। सेठ कालिकाप्रसाद का पुत्र विनोद अपनी बहन रश्मि से कहता है कि 'दीदी, इट इज नाट नेससरी टू फोक मोर नोज इन एव्री एफेयर। राजनीति, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र की किताबें पढ़ने से ही बोलने का हक नहीं मिल जाता'। इसके उत्तर में रश्मि के ये कथन 'क्यों? राजनीति, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र भी तुम्हारी सम्पत्ति है क्या? जैसे चाहोगे, तुम्ही इस्तेमाल करोगे? अगर तुम्हारे पास तर्क नहीं है, प्रमाण नहीं है, तो व्यर्थ में दूसरे को दबाने की कोशिश क्यों करते हो? (26-27) यहाँ आधुनिक नारी की प्रगतिशील दृष्टि को रेखांकित किया गया है। रश्मि बड़े मियां को रामलीला मण्डली से मुसलमान होने के कारण निकाले जाने पर वह अपने पिता के विचारों का विरोध करती है और साथ ही रामलीला में सीता का रोल निभाने के लिए सहर्ष तैयार होकर एक नई लीक खिंचती है। अलीबहादुर और सेठ कालिकाप्रसाद हिंदू - मुस्लिम दंगे कराकर गरीबों की बस्ती में आग लगवाकर रामलीला की जमीन पर यह कहकर कब्जा कर लेते हैं कि इसका उपयोग कौमी एकता ट्रस्ट के लिए किया जाएगा। इससे यह साफ जाहिर होता है कि शोषक शक्तियों का कोई ईमान-धर्म नहीं होता।

संपूर्ण नाटक मंचीयता की दृष्टि से दो अंकों में चौदह दृश्यों के माध्यम से समाप्त होता है। जिसमें प्राचीन लोक नाट्य परंपरा एवं शिल्प के माध्यम से नवीन विचारों को प्रस्तुत किया गया है। नाटक पर तत्कालीन साम्प्रदायिक तनाव और छल-छदम से भूमिहस्तांतरण की नीति का प्रभाव है। तैमूर, माखनचोर, गठरी बाई, प्रायश्चित आदि राकेश के पूर्णकालिक नाटक और पर्दाफाश एवं क्या बदला है नुक्कड़ नाटक हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने नौकर की कमीज, खोजा नसरुद्दीन, सदगति 82 का नाट्य-रूपांतरण किया है।

नाग - बोडस के बेहद लोकप्रिय मंचित नाटक 'खूबसूरत बहू' के बाद 'नर-नारी' (उर्फ : थैंकू बाबा लोचनदास) काव्य नाटक 1998 में आया। उत्तर भारत के प्राचीन लोकनाट्य नौटंकी की परंपरा पर आधारित यह नाटक नारी-पुरुष की विभिन्न मनःस्थितियों को रेखांकित करता है। कहा भी गया है कि हर पुरुष में कहीं न कहीं एक नारी होती है और हर नारी में कहीं न कहीं एक पुरुष होता है। 'थैंकू बाबा लोचनदास' नाम से इसकी प्रस्तुति राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल, नई दिल्ली द्वारा 16 जनवरी, 1996 में स्व० ब्रजमोहन शाह के निर्देशन में हो चुकी है। जिसमें संगीत श्री पंचानन पाठक ने दिया था।

भारत का गाँव जादू-टोना, भूत-पिशाच, ब्रह्म और पीर की समाधि में विश्वास करता है। जहाँ गाँव की भोली-भाली जनता अपनी तमाम मन्नतों के साथ आज भी पूजा अर्चन करती हैं। 'नर-नारी' की कहानी भी बाबा लोचनदास के सिराप पर आधारित है जहाँ कि गाँव की औरतें मैया के दर्शन के लिए काफी दूर गई थीं और बाबा की समाधि पर नृत्य नहीं कर सकीं तो महात्मा ने एक उपाय बताया कि उन औरतों के आदमी लोचन बाबा की लुगाई बनकर यहाँ अपनी-अपनी औरतों से दूर रहकर बाबा का पूजा - पाठ एकदम पवित्तर पोसाख पहनकर करें और बर्ताव भी औरत जैसा करें। अन्यथा बाबा के सिराप से औरत-आदमी के मेल का खात्मा हो जाएगा।

नाटक में दिलावर, कान्तीलाल, कमलसिंह, बल्ली पुरुष पात्र क्रमशः दिलवरी, कान्ता, कमला और बल्लो के रूप में नारी की भूमिका का निर्वाह करते हैं। चमेलीजान नौटंकी की बाई और कान्तीलाल की पत्नी गुल्लो अन्य नाटक के महत्वपूर्ण पात्र हैं। प्रस्तुत नाटक में लोचनबाबा की समाधि पर औरत बना दिलावर कांतिलाल को लेकर भाग जाता है और चमेलीजान से मिलकर उसे नौटंकी में शामिल करके 'जमींदार का संवाद' नामक नाटक का प्रदर्शन करता है। जिसमें कि वह स्वयं जमींदार बनता है और अपनी साली कांतिलाल उर्फ कांता को बनाता है। कांता के अभिनय और सुंदरता पर मुग्ध होकर दिलावर उससे प्रेम करने लगता है। इन दोनों के बीच हुए प्रेम काव्य-संवाद में लोकनाट्य नौटंकी की परंपरा जीवंत हो उठती है।

बहत : तेरी बांकी अदा पे मैं कब से फिदा,
तेरे बिन अब ये जीवन सुहाता नहीं।
घूमने दे मुझे अपने मेहू जरा 55,
दूर रहकर तड़पना मूं आता नहीं।(23)

दिलावर अपने मंसूबे में कामयाब न होकर पुनः लोचनबाबा के पास दिलवरी के रूप में आ जाता है और

उसका मेल-मिलाप कांतिलाल की पत्नी गुल्लो से हो जाती है। नारी रूप का फायदा उठाकर वह गुल्लो के समीप आना चाहता है। उधर कांतिलाल चमेलीजान के प्रति आकर्षित होने लगता है। गुल्लो अपने पति का इंतजार यह जान कर भी करती है कि उसका पति चमेलीजान से प्रेम करता है। यहाँ वह दिलावर के बहुत चाहने पर भी उससे दूरी बनाकर रखती है लेकिन अंत में जब उसका पति आता है तो गुल्लो उसको खरा-खोटा सुनाकर दिलावर के साथ जाने के लिए तैयार हो जाती है। दिलावर थैंकू बाबा लोचनदास कहकर गुल्लो के गले में बाहें डालकर चल देता है। यहाँ यह बात समझ में नहीं आती कि आखिरकार गुल्लो अपने पति का साथ छोड़कर दिलावर के साथ क्यों चली जाती है?

दरअसल इस नाटक में समलिंगी प्रेम का संकेत भी दिया गयाहै जोकि समाज में चोरी-छुपे बहुत दिनों से चला आ रहा है और जिस पर कि कानूनी मांग भी चल रही है। इसके साथ ही नारी-पुरुष की मानसिकता को बड़ी बखूबी से प्रस्तुत किया गया है। दक्षिण भारत के किसी भू-खंड में इस तरह की परंपरा को आधार बनाकर लेखक ने लोकजीवन से विलुप्त होती हुई लोकनाट्य नौटंकी को जीवंत रूप प्रदान किया है।

विचार, भाव, भाषा और मंचीयता की दृष्टि से उक्त नाटक काफी लोकप्रिय रहे। इनके अतिरिक्त डॉ० किरन चन्द्र शर्मा का 'बीमार शहर का सूत्रधार', महेशदत्त शर्मा का 'जनता फ्लैट' और शील का 'तीन दिन तीन घर' (1993), दिविक रमेश का 'खण्ड-खण्ड अग्नि', डॉ० रामविलास शर्मा का 'पाप के पुजारी', मोहन राकेश के 'बारह सौ छब्बीस बटा सात' कहानी का जितेन्द्र मित्तल द्वारा नाट्यरूपान्तर (94), राकेश का 'रामलीला', रामेश्वर प्रेम का 'शस्त्र-संतान' (97) स्वदेश दीपक का 'जलता हुआ रथ' (98) आदि नाटक आए।

***

With Best Compliments from :

Tel. : 2312087
Cell : 9422058876 / 9422058896

M/s. K. M. Ali

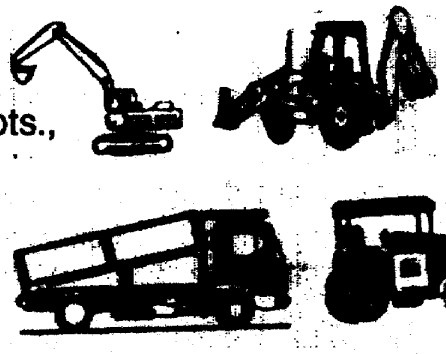

Office :
Flat No. 7, Vaibhav Apts.,
Khadpabandh,
Ponda - Goa 403 401

Regd. Office :
Totekar Chal,
Nagar Priol - Mardol
Goa 403 404

WE HIRE EXCAVATOR, BACKOE LOADER & ROAD ROLLER